महाकवि पुष्पदंत के साहित्य में रस-विमर्श

डॉ सत्यनारायण भारद्वाज[1], डॉ मीनाक्षी मारू[2]
[1]सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं/
[2]पूर्व शोधार्थी, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं/

शोध-सारांश

अपभ्रंश साहित्य में हमें भाषा की दो धाराएँ अनवरत प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। एक प्राचीन संस्कृत और दूसरी प्राकृत परिपाटी को लिये साहित्यिक भाषा, जिसमें पदयोजना, अलंकार, शैली आदि उत्कृष्ट रूप में विद्यमान है। दूसरी धारा अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त और स्वच्छन्द है, जिसमें भाषा का साधारण बोलचाल वाला रूप मिलता है। कुछ कवियों ने एक धारा को अपनाया है तथा कुछ ने दूसरी धारा को। महाकवि पुष्पदंत जैसे रस-विमर्श प्रतिभाशाली कवि की रचनाओं में दोनों धाराएँ प्राप्त होती हैं। महाकवि पुष्पदंत के साहित्य में साहित्य की सभी विशेषताएं सहज रूप में प्राप्त होती है फिर भी प्रस्तुत शोधालेख में पुष्पदन्त के साहित्य में रस-योजना का प्रतिपादन मुख्य ध्येय है। उन्होंने अपने साहित्य में सभी रसों को स्थान दिया है फिर भी शान्त रस का महत्त्व स्वतः सिद्व है। शोधालेख में सर्वप्रथम रस के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है तत्पश्चात् महाकवि पुष्पदंत के साहित्य में प्रतिपादित रसो की समीक्षा की गई है।

प्रस्तावना

साहित्य में रस का अत्यधिक महत्त्व है। रस से रहित काव्य को निर्जीव काव्य माना जाता है। अतः सर्वप्रथम साहित्य में रस के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए रस के स्वरूप को व्याख्यायित किया जा रहा है-

रस-विमर्श

"रसात्मकं वाक्यं काव्यम्"[1] रसयुक्त वाक्य ही काव्य है। अर्थात् रस ही काव्य का प्रमुख लक्षण या गुण है। काव्य-रस से सहृदयों को जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह लौकिक पदार्थों से प्राप्त आनन्द से उच्चकोटि का होता है। इसीलिए उसे "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा

गया है। आनन्द जीवन की मूल्यवान् निधि है। 'रसो वै सः' कहकर विद्वानों ने स्वयं ब्रह्म को आनन्दमय माना है।

भरतमुनि के अनुसार "विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"[2] अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारीभावों के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी गई है। रस-प्रक्रिया सहृदय को उसके हृदय में विद्यमान स्थायी भाव को ही रसरूप में अनुभव कराती है। स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होकर आस्वाद्य होता है। ये जन्मजात सर्वनिष्ठ और रस परिणामी होते हैं। भरतमुनि[3] ने इनकी संख्या आठ मानी है। वे इस प्रकार हैं -रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, जुगुप्सा, भय, और विस्मय से उत्पन्न होने वाले श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक और अद्भुत। शान्त रस को उन्होंने अभिनय मानकर, उसका वर्णन नहीं किया किन्तु परवर्ती आचार्यों ने शान्त रस को मानते हुए नौ रसों की परिकल्पना की है।

आचार्य दण्डी के अनुसार गुण काव्य की आत्मा है लेकिन काव्य में रस को भी समान महत्त्व दिया है तथा मधुर गुण का सम्बन्ध रसों से माना हैं-

मधुरं रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसः स्थितः।[4]

अर्थात् रसवद् वाक्य ही मधुर होता है। अतः रस और माधुर्य एक ही पदार्थ है।

वामन: ये रीतिवादी आचार्य होते हुए भी कांति गुण के अन्तर्गत रस का समावेश मानते हैं- दीप्तरसत्वं कांतिः।[5] जिस काव्यबंध में शृंगारादि रस दीप्त हों, वहाँ कांतिगुण होता है।

अंतःकरण में रजोगुण और तमोगुण को हटाकर सत्त्वगुण के सुन्दर, स्वच्छ प्रकाश होने से जो रस का साक्षात्कार होता है वह अखण्ड, अद्वितीय स्वयं प्रकाश-स्वरूप और आनन्दमय है। काव्य में रस का वही स्थान है, जो शरीर में आत्मा का है। जिस प्रकार सब अंग-प्रत्यंग होते हुए भी बिना आत्मा के शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार छंद, अलंकार आदि सभी अवयवों से पूर्ण काव्य रस के बिना व्यर्थ है।

पुष्पदन्त के साहित्य में रस-विमर्श

वीररस

महापुराण में चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेवों के संघर्ष में वीररस के उदाहरण मिलते हैं। वीररस के वर्णनों में वीररस के परिपाक के लिए कवि ने भावानुकूल शब्दयोजना की है।

भडु को वि भणइ रिउं एंतु चंडु, मइं अज्जु करेवउ खंडखंडु।[6]

युद्धोन्मुख योद्धा की वधु उसे दधि-तिलक नहीं लगाती अपितु वह उसे बैरी के रूधिर से तिलक करना चाहती है-

वहु कासु विदेइ ण दहियतिलउ, अहिलसइ वइरिरूहिरेण तिलउ।[7]

कोई वधु अपने पति को अक्षत नहीं लगाती, वह तो शत्रु के हस्ति-मुक्ता रूपी अक्षतों को चढ़ाने की कामना करती है-

वहु कासु घिवइ ण अक्खयाउ, खलवइ करिमोतियअक्खयाउ।[8]

भारतीय वीरांगना का यह रूप उत्तरकालीन भारतीय राजपूत नारी में विशेष प्रस्फुटित हुआ है।

णायकुमारचरिउ में पुष्पदंत ने नायक को वीररस का आश्रय दिखाया है। यहाँ वीर-रस श्रृंगार से परिपुष्ट है क्योंकि नागकुमार के शौर्य को देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाती है। सैन्य-संचालन में वीररस की अभिव्यंजना को प्रस्तुत किया गया है-

धरिणि वि संचलइ, मंदरू वि टलटलइ।
जलणिहि वि झलझलइ, विसहरू वि चलचलइ।[9]

श्रृंगाररस

साहित्य में श्रृंगार रस का विशेष महत्त्व है। रामायणादि शांतरस प्रधान काव्यों में हमें श्रृंगार के रमणीक चित्रण प्राप्त होते हैं। जैन कवियों के काव्य भी अधिकांश शान्तरस प्रधान ही होते हैं, लेकिन फिर भी श्रृंगाररस की उपेक्षा वे भी नहीं कर सकते हैं।

पुष्पदंत के काव्य में शांत तथा वीररस की भाँति श्रृंगार के अनेक सरस स्थल हैं जैसे - महापुराण में श्रृंगाररस की व्यंजना स्त्रियों के सौन्दर्य तथा नख-शिख के वर्णन में मिलती है। श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का निरूपण कवि ने किया है। सीता के वर्णन में कवि कहते हैं-

दियदित्तिय जित्तइं घत्तियाइं इयरह कह विद्धइं मोत्तियाइं।
मुहससिजोण्हइ दिस धवल थाइ इयरह कह ससि झिज्जंतु जाइ।।[10]

सीता के दाँतों की पंक्ति से मोती जीते गये और तिरस्कृत हो गये अन्यथा वे क्यों बींधें जाते? मुखचन्द्र चन्द्रिका से दिशाएँ धवलित हो गई अन्यथा चन्द्रमा क्यों क्षीण होता?

नख-शिख के परम्परागत वर्णन में भी कवि ने अपनी अद्भुत कला से अनुपम चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। सुलोचना के सौन्दर्य संदर्भ में कवि कहता है-

पायहुं काइं कमलु समु भणियउं, तं खणभंगुरू कइहिं ण मुणियउं।
रिक्खइं वासरि कहिं मि ण दिट्ठइं, कण्णाणाहपहाहि णं णट्ठइं।[11]

उसके पैरों को कमल के सदृश कैसे कहा जाये, वे तो क्षणभंगुर हैं। ऐसा कवियों ने सोचा। दिन में नक्षत्र कहीं दिखाई नहीं देते हैं मानो वे सुलोचना के नखों की प्रभा से नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार कवि ने संयोग-श्रृंगार का वर्णन किया है।

पुष्पदंत के वियोग श्रृंगार-वर्णन में हाहाकार नहीं, अपितु हृदय को स्पर्श करने वाली करुण वेदना की पुकार है। ऐसे स्थलों में वियोगी का दुःख उसके हृदय तक ही सीमित नहीं रहता, प्रकृति भी उसके शोकावेग से प्रभावित दिखाई देती है। सीता के वियोग से राम को जल, विष के समान और चन्दन का अग्नि के समान अनुभव होता है वहीं वियोगिनी को मलयानिल भी प्रलयानिल के समान, आभूषण, रस्सी के बन्धन के समान प्रतीत होता है।

मलयाणिलु पलयाणलु भावइ, भूसणु सणु करि बद्धउ गावइ।[12]

हास्यरस

महाकवि पुष्पदन्त के काव्य में हास्यरस के स्थल अधिक नहीं मिलते हैं। कुछ ही प्रसंगों में जहाँ वाणी और विपरीत चेष्टाओं द्वारा हास्य की अभिव्यंजना होती है, वहां हास्यरस दृष्टिगत होता है। नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

एक स्त्री वसुदेव को देखकर इतनी सुध-बुध खो बैठती है कि शून्यगृह में अपने शिशु के स्थान पर अपनी गोद में बिल्ली को लेकर दौड़ पड़ती है और इस प्रकार लोगों के लिये हास्य की परिस्थिति उपस्थित कर देती है-

तग्गयमण क वि मुहआलोयणि, वीसरेवि सिसु सुण्णणिहेलणि।
कडियलि धरमज्जारु लएप्पिणु, धाइय जणवइ हासु जणेप्पिणु।।[13]

इसी प्रकार कोई नारी उखल (ओखली) को छोड़कर धरती पर ही मूसल चलाने लगती है-

काहि वि कंडंतिहि ण उद्दूहलि, णिवडिउ मूसलघाउ धरणीयलि।[14]

करूणरस:

कवि ने करूण रस के मार्मिक चित्रण भी अपने काव्यों में यथास्थान प्रस्तुत किये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के अंतस् का आक्रोश उसके काव्य के करूण-प्रसंगों में ही अभिव्यक्त हो रहा हैं। महापुराण के एक प्रसंग में जब लक्ष्मण की मृत्यु पर राम मूच्छित हो जाते हैं और जल-सिंचन के उपरान्त जब उन्हें चेतना आती है तो वे हा भ्राता! हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मीधर! आदि कहते हुए विलाप करते हैं-

विहिणा सोसिउ गुणणिहिगहीरु, सोएण पमुच्छिउ रामु वीरू।
सिंचिउ सलिलें माणवमहंतु, उम्मुच्छिउ हा भायर भणंतु।
घत्ता-हा दहगुहणिहण हा लक्खण हा लच्छीहर।
हा रयणाहिवइ हा वालिहरिणकंठीरव।[15]

इधर देवर के हेतु सीता का शोक भी कम नहीं है। वह कहती है कि हे देवर! आपने राम को अकेले क्यों छोड़ दिया ? आपके बिना अब जीवन में क्या हैं-

धाहावइ सीय मणोहिरामु, एक्कल्लउ छंडिउ काइं रामु।
हा हे देवर महु देहि वाय, पइं विणु जीवंतहं कवण छाय।[16]

पुत्र-शोक का एक करूण दृश्य णायकुमारचरिउ में उस समय दृष्टिगत होता है, जब शिशु नागकुमार अचानक बावड़ी में गिर जाता है। यह समाचार सुनते ही माता पृथिवी देवी मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है। वह रुदन करती हुई कहती है कि हे पुत्र! तुम्हें यह क्या हो गया ? मैं सभी प्रकार के दुःख सहन कर सकती हूँ, परन्तु तुम्हारे बिना में कैसे जीवित रह सकती हूँ ? यह कहते हुए, वह स्वयं भी बावड़ी में गिरकर, मरने का प्रयत्न करती है-

तं णिसुणिवि विलुलियमेहलिय, पुहईमहएवि विसंठुलिय।
धाइय रोवइ पत्थिवधरिणि, णियकलहविओइ णं करिणि।
हा पुत्त पुत्त तामरसमुह, हा पुत्त पुत्त किं हुयउ तुह।
बहुदुक्खसयाइं सहंतियए, पइं विणु किं मइं जीवंतियए।
इय पभणिवि मरणु जि चिंतियउ, अप्पाणाउ तित्थु णि घत्तियउ।[17]

युद्धोत्तर वर्णनों में युद्ध के परिणामस्वरूप करूणरस और वीभत्सरस के दृष्य सामने आ जाते हैं। करूणरस का एक प्रसंग मंदोदरी-विलाप में भी मिलता है-

ता तहिं मंदोयरि देवि किसोयरि थण अंसुयधारहिं धुवइ।
णिवडिय गुणजलसरि खगपरमेसरि हा हा पिय भणंति रूयइ।[18]

प्रस्तुत प्रसंग में मंदोदरी देवी अपने वक्षस्थल को अश्रुधारा से धोती है। गुणजलरूपी नदी की भाँति भूमि पर गिर जाती है और हा प्रिय! हा प्रिय! कहकर रो उठती है।

पइं विणु जगि दसास जं जिज्जइ, तं परदुक्खसमूहु सहिज्जइ।
हा पिययम भणंतु सोयाउरु, कंदइ णिरवसेसु अंतेउरु।[19]

हे दसमुख! यदि तुम्हारे बिना जग में जिया जाता है तो यह परम दुःख समूह को सहन करना है। हा प्रियतम! कहता हुआ शोक से व्याकुल सम्पूर्ण अन्तःपुर क्रंदन करने लगता है।

शांतरस:

शांतरस का रस-राजत्त्व इसलिए सिद्ध है कि मानव-जीवन की समस्त वृत्तियों का उद्गम शांति से ही होता है। शांति का अनंत भण्डार आत्मा है। जब आत्मा देह आदि परपदार्थों से अपने को भिन्न अनुभव करने लगती है तभी शांतरस की उत्पत्ति होती है। यह वह विशुद्ध-ज्ञान और आत्मानंद की दशा है, जहाँ कवि का उद्देश्य मनुष्यमात्र में वैराग्य उत्पन्न कर, चरमोत्कृष्ट सुख-शांति की ओर ले जाना रहा है, जिनमें वे सफल हुए हैं।

शांतरस के स्थायी भाव के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। मम्मट के मतानुसार तत्त्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद उसका स्थायी भाव है।[20] विश्वनाथ ने शम् को शांत का स्थायी भाव मानते हुए, उसके स्वरूप को प्रस्तुत किया है-

न यत्र दुःखं न सुखं न चिंता न द्वेष रागौ न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शम प्रधानः।।[21]

अर्थात् जहाँ न दुःख हो, न सुख हो, न चिन्ता हो, न राग-द्वेष हो तथा न कोई इच्छा हो, उसे शांत रस कहते हैं। यह परम वीतराग की अवस्था है, जहाँ अखण्ड शांति विराजती है।

महाकवि पुष्पदन्त ने इसी अवस्था का ही वर्णन अपने शब्दों में किया है-

जहिं भुक्ख ण तण्ह ण णिद्दडिय, णउ देह सत्तघाउहुं घडिय।
जहिं सत्तु ण मितु ण घरिणि घरु, जहिं लोहु ण कोउ ण कामजरू।
णउ माणु ण माय ण मोहु मउ, जहिं केवलु जीउ जि णाणमउ।[22]

प्रस्तुत प्रसंग णायकुमारचरिउ का है। जिसमें पिहिताश्रव मुनि द्वारा पृथिवीदेवी को कहे गए वचनों में भी निर्वेद के दर्शन होते हैं। यहाँ वृद्धावस्था द्वारा यौवन का नाश, जीव का जन्म

तथा मरण, श्रीमन्तों का दरिद्र होना, अतिसुन्दर रूप का क्षय, प्रिय पात्र से भी घृणा होना आदि बातों का उल्लेख हुआ है-

णियसिरि किं किरमण्णंति णरा, णवजोव्वणु णासइ एइ जरा।
उप्पण्णहों दीसइ पुणु मरणु, भीसावणु दुक्कइ जमकरणु।
सिरिमंतहो घरि दालिद्दडउ, पइसरइ दुक्खभारुव्भडउ।
अइसुन्दररूवें रूउ ल्हसइ, वीरु वि संगामरंगि तसइ।
पियमाणुसु अण्णु जि लोउ जिह, णिण्णेहें दीसइ पुणु वि तिह।[23]

जसहरचरिउ में भी महाराज यशोधर अपनी पराशक्ता नारी अमृतमती का कुकृत्य देखकर अत्यन्त व्यथित होते हैं। वे विचार करते हैं कि मानव-शरीर दुःख की पोटली है। यह धोने से भी पवित्र नहीं होता, सुगन्धित करने से भी सुरभित नहीं होता, पोषण करने से भी बलवान नहीं होता, प्रसन्न किया हुआ भी अपना नहीं होता है। इसप्रकार चिन्तन करते हुए, वे इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि प्रभात होते ही नगर, परिवार तथा राजलक्ष्मी का त्याग कर, गहन वन और सघन पर्वतों की गुफाओं का आश्रय लूँगा। वहीं पर, नर तथा नागों द्वारा पूजित मुनि-लिंग धारण कर, महातप का आचरण करूँगा।

माणुससरीरु दुहपोट्टलउ, धोयउ घोयउ अइविट्टलउ।
वासिउ वासिउ णउ सुरहि मलु, पोसिउ पोसिउ णउ धरइ बलु।
तोसिउ तोसिउ णउ अप्पणउ, मोसिउ मोसिउ घरभायणउ।[24]
पुरु परियणु मिल्लिवि रायसिरि, कल्लइं आसंधमि गहण गिरी।
पय पाडिय णरफणि सुरवरइं, तउ करमि धरमि मुणि वरवयइं।[25]

वीभत्स रस

वीभत्स रस के दर्शन हमें श्मशान तथा युद्ध के दृश्यों में विशेष रूप से प्राप्त होते हैं। कवि ने श्मशान के दो स्थलों के वर्णन किये हैं। एक तो महापुराण में तथा दूसरा जसहरचरिउ में।

जसहरचरिउ के श्मशान के दृश्य में शृगाल-शृगालियों द्वारा विदारित उदर वाले मृतकों के समूह तथा कर-कर शब्द करने वाले काक-कुलों से व्याप्त हो रहा था। वहाँ फल रहित शुष्क वृक्ष थे, राक्षसियों के मुखों से दीर्घ निःश्वास निकल रहा था और शूली पर चढ़ाएँ हुए चोरों के भयानक शव पड़े हुए थे। असंख्य मांस-भक्षी पक्षी उड़ रहे थे तथा निशाचर किलकिल निनाद

कर रहे थे। चिता में जलते हुए केश-पुंज के धूम्र की गंध वातावरण में सर्वत्र फैल रही थी। भग्न भाजन तथा कपाल पड़े हुए थे-

तं च केरिसं काल गोयरं, सिवसियाल दारियमओयरं।
करयरंतकायउलसंकुल, ढंखरूक्ख सुक्खेहिं णिप्फलं।
रक्खसोमुहामुक्कणीसणं, सूलभिण्ण चैरउलभीषणं।
पक्खिपक्खलक्खेहि छाइयं, किलकिलंतणिसियर णिणाइयं।
भीयरं चियाचिच्चिजालयं, घित्तवालपूलोलिणीलयं।
धूमगंधधावंत सायणं, सव्वदेहिदेहावसाणयं।
पवणपेल्लणुल्ललियभप्परं, भग्गभाण, विक्खित्तखप्परं।[26]

महापुराण के एक स्थल पर राम-रावण युद्ध में वीभत्सरस का निरूपण हुआ है, जिसका एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है-

किलिकिलरवसोसियकीलालइं, दिसिविदिसुट्ठउग्गवेयालइं।
मिलियदलियपक्कलपाइक्कइं, वसकद्दमणिमण्ण रहचक्कइं।
अंतमिलंतथंतकायउलइं, वालपूलणीलियधरणियलइं।[27]

इस स्थल पर कल-कल शब्द करता हुआ रक्त-प्रवाह, वसा के कर्दम में निमग्न रथ-चक्र, आँतों के ढ़ेर में काक-समूह तथा केश-निचय-पूरित धरणीतल देखकर सहज ही जुगुप्सा का भाव उत्पन्न हो जाता है।

अद्भुतरस

कवि पुष्पदंत की रचनाओं में विद्याधरों द्वारा विविध प्रकार के आश्चर्यजनक एवं कौतूहल-पूर्ण कार्यों को संपादित करते हुए, दिखलाया गया है। इन विद्याधरों को अनेक विद्याएँ सिद्ध होती हैं, जिनकी सहायता से वे आकाश में उड़ते हैं तथा इच्छानुसार दूसरे शरीर को भी धारण कर सकते हैं।

महापुराण की संधि 32 से 35 तक, राजकुमार श्रीपाल तथा सुखावती के चरित्र में विद्याधरों द्वारा अनेक अद्भुत कार्य किये जाने के वर्णन प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त महापुराण की संधि 3 में इन्द्र का अद्भुत नृत्य, संधि 6 में नीलंजसा अप्सरा की आकस्मिक मृत्यु, संधि 14 में रत्न दंड के प्रहार से गुफा के कपाट खुलना, संधि 51 में त्रिपृष्ठ द्वारा कोटि शिला-संचालन आदि अलौकिक घटनाओं के वर्णन भी मिलते हैं।

महापुराण में एक स्थल पर राजकुमार श्रीपाल एक घोड़े पर सवार होकर दूर निकल जाता हैं। उसके पीछे स्वजन हाहाकार करते हैं। वैताढ्य पर्वत के निकट पहुंचकर, वह मायावी घोड़ा भयंकर राक्षस का रूप धारण कर लेता है, जो अद्भुत रस को प्रकट करने वाला वर्णन है-

वेयड्ढमहामहिहरणियडि कांणणि कुसुमियतरूवरि वियडि।
रिउणा तुरयत्तणु परिहरिउ भीयरु रयणीयररूवु धरिउ।[28]

रौद्ररस:

रौद्ररस का स्थायी भाव क्रोध है। प्रतिकूल व्यक्तियों के विषय में तीव्रता के उद्बोध को ही क्रोध कहेंगे। कवि ने युद्ध के प्रसंगों में क्रोध की सुन्दर अवतारणा की है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

महापुराण में चक्रवर्ती भरत मगधराज के प्रासाद में बाण-निक्षेप करते हैं। अपनी कीर्ति तथा प्रतिष्ठा का यह अपमान देखकर, उनकी भ्रू-भंगिमा कुटिल हो जाती है। वह विस्फुरित दशनों से अपने अधर दबाते हुए मेघ-गम्भीर स्वर में प्रश्न करते हैं कि किसने स्वयं यमराज की जिह्वा को उत्पाटन करने का साहस किया ? बोलो, कौन काल द्वारा अपना क्षय चाहता है? कंपायमान नाग-वलय को कौन ग्रहण करना चाहता है ? धरणि-सिंहासन को किसने भग्न करना चाहा है? बोलो, किसने पर्वत को अपने हाथों में उठा लिया ? किसने सोते हुए सिंह को जगाया? नभ में गमन करते हुए सूर्य को किसने स्खलित किया? किसके सिर पर काक ने शब्द किया? यम के दाँतों के नीचे कौन बसा है? बोलो, किसने मेरे मान का खण्डन किया है ? जिसने रण प्रारम्भ करने की इच्छा की है, वह मुझसे आज नहीं बच सकता है, यह कहते हुए उसने तलवार निकाल ली।[29]

महापुराण से ही एक दृश्य और प्रस्तुत है-

ता समरचित्तु विसरिसु विरूद्धु, विप्फरियदसणडसियाहरूद्धु।
कढिणयरपाणिपीडियकिवाणु, उद्धुयमीसियहयभउंहकोणु।
तिवलीतरंगभंगुरियभालु, णं सीहु कुटिलदाढाकरालु।
अरुणच्छिछोह रंजियदियंतु, णं पलयजलणु धगधगधगंतु।[30]

भरत ने विस्फारित दशनों से अपने अधर दबा लिये हंै। शक्तिशाली हाथ में कृपाण कसकर पकड़ ली। उनकी भौहों के कोण संकुचित हो गये। भाल पर तीन रेखाओं की भंगिमा दृष्टिगत

होने लगी है मानो सिंह के कुटिल दाँत ही हों। उनके अरूण नेत्रों के क्षोभ से दिशाएँ रंजित हो गईं मानो प्रलयाग्नि धग्-धग् जल रही हो।

एक दृश्य ऐसा ही णायकुमारचरिउ से यहाँ प्रस्तुत है-

विप्फुरियरयणकुंडलधरेण, अपणामें खंडियतुहसिरेण।
मरु कवणु दूउ किर कवणु राउ, सव्वहँ पाडमि जमदंडघाउ।
णीसारहु मारहु पिसुणु धिट्ठु, सरसुत्तियारु पाविट्ठु दुट्ठु।[31]

अर्थात् क्रोध-भाव की व्यंजना णायकुमारचरिउ के इस प्रसंग में भी देखी जा सकती है- गौड़राज अरिदमन की सभा में महाव्याल शांति-प्रस्ताव लेकर जाता है, परन्तु वह इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है और क्रोधित होकर अनेक वचन कहता है। यहाँ दूत के वचन आलम्बन है। अरिदमन द्वारा कहे गये शब्दों में रौद्र का स्पष्ट रूप लक्षित होता है।

भयानक रस

भयानक रस की उत्पत्ति भयावह दृश्य को देखने या बलवान् व्यक्तियों के अपराध करने से होती है। इसका स्थायी भाव भय होता है। भरतमुनि ने भयानक रस का वर्णन करते हुए बताया है कि विकृत ध्वनियों से, पिशाच और प्रेत के दर्शन से, शृगाल एवं उलूक से, त्रास तथा उद्वेग से, शून्य घरों, वनगमन, स्वबंधुजनों के वध या बंधन को देखने, सुनने या चर्चा करने आदि कारणों या विभावों से यह रस उत्पन्न होता है।[32]

महापुराण में भरत के धनुष की टंकार भय का आलम्बन है। तारा-ग्रहों का आन्दोलित होना, धरती का डोलना, मेरू का कंपित होना, समुद्र का चलायमान होना तथा पुर-प्राकार आदि का धराशायी होना उद्दीपन है। शंका, चिन्ता, त्रास, आवेग आदि संचारी भाव भी यहाँ स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं। कायरों का मरना, वीरों का आशंकित होना तथा सुरेन्द्रादि का कंपित होना अनुभाव है।[33]

भय का दूसरा उदाहरण महापुराण से उस समय का है, जब भरत की दुर्दमनीय सेना म्लेच्छ-मंडल को कंपित करती हुई प्रस्थान करती है। कवि ने दंडक छन्द में गजों की चिंघाड़, तुरंगों का हिनहिनाना आदि का वर्णन ऐसी वर्ण-योजना द्वारा किया है कि समग्र वातावरण में भय व्याप्त होता हुआ प्रतीत होता है-

जं गुलुगुलंतचोइयमयंगपयभूरिभारभारिज्जमाणभूकंपणमियणाइंदमुक्कपुक्काररावघोरं।

जं हिलिहिलंतवाहियतुरंगखरखुरखयावणीचलियधूलिणासंततियसतरुणीविचित्तंघोलंतचेलचित्तं।[34]

ऐसी विकट परिस्थिति को चारों ओर से आते देखकर म्लेच्छराज भयभीत होकर कहता है कि अब कहाँ शरण है, मेरा मरण तो निश्चित है क्योंकि शत्रु प्रचण्ड रूप से आगे बढ़ रहा है।

यहाँ भय का आलम्बन भरत की विशाल सेना है। पूर्वोक्त उद्धरण में वर्णित सेना का प्रचण्ड रूप ही उद्दीपन है। त्रास, शंका और चिन्ता के भाव संचारी रूप में हैं।

इसके अतिरिक्त वानर सेना द्वारा लंका को घेरने का उदाहरण महापुराण की संधि 77/1/15 में आया है और ऐसे ही प्रसंग महापुराण के कई स्थानों पर दिखाई देते हैं। जहाँ भय का भाव उत्पन्न होता है। श्मशान के दृश्यों में कवि ने भयानक रस के साथ वीभत्स रस का संयोग भी उपस्थित किया है।

निष्कर्ष

कवि के रस सम्बन्धी इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कवि की रचनाएँ मानव-समुदाय के भावों एवं मनोवेगों के भव्य चित्रों से पूर्ण हैं। यही कारण है कि समग्र अपभ्रंश साहित्य में महाकवि पुष्पदंत का नाम बड़े ही आदर-सम्मान के साथ लिया जाता है।

सन्दर्भ

1. साहित्य दर्पण - पंडित विश्वनाथ, 3/2-3
2. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, अभिनव भारती, टीका, 6/31
3. नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 7/3
4. काव्यादर्श - आचार्य दण्डी, 1/51
5. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति - वामन, 3.2.15
6. महापुराण, 52/11/4
7. महापुराण - 52/13/4-5
8. महापुराण - 52/13/4-5
9. णायुमारचरिउ - 7/8/15-16
10. महापुराण, 70/11/5-6
11. महापुराण - 28/12/8-9
12. महापुराण - 78/3/7-8
13. महापुराण - 83/3/1-2

14.महापुराण - 83/3/3
15.महापुराण - 79/11/11-14
16.महापुराण - 79/12/1-2
17.णायकुमारचरि - 2/13/1-5
18.महापुराण - 78/21/14-15
19.महापुराण - 78/22/12
20.काव्य प्रकाश - पृ. 118
21.साहित्य दर्पण, मिलाख्या टीका, सूत्र-249
22.महापुराण - 36/13/1-3
23.णायकुमारचरिउ - 2/4/5-9
24.जसहरचरिउ - 2/11/1-3
25.जसहरचरिउ - 2/12/1-2
26.जसहरचरिउ - 1/13/2-8
27.महापुराण - 78/4/7-9
28.महापुराण 32/5/11-12
29.महापुराण - 12/17/1-11
30.महापुराण - 17/1/3-6
31.णायकुमारचरिउ 4/9/6-8
32.नाट्यशास्त्र - 7/69
33.महापुराण - 12/15/4-14
34.महापुराण - 14/7/3-4

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

1. काव्यदर्श, दण्डी, सम्पा. श्रीरामचन्द्र मिश्र, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1958.
2. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, चैखम्बा प्रकाशन, बनारस, 1955.
3. काव्यालंकार, रुद्रट, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली, 1983.
4. जसहरचरिउ, पुष्पदंतकृत, सम्पा. डॉ हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-1, 1972.
5. णायकुमारचरिउ, पुष्पदंतकृत, सम्पा. डॉ हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-1, 1972.

6. नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, 1934.
7. महाकवि पुष्पदंत और उनका महापुराण, डॉ सुदर्शन मिश्र, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, 1987.
8. महापुराण, पुष्पदंतकृत, सं.- डॉ. पी.एल. वैध, माणिकचन्द्र, दिगम्बर जैन ग्रंथमाला, बम्बई, 1937-41.
9. साहित्य दर्पण, पं. विश्वनाथ, मोतीलाल, बनारसीदास, दिल्ली।